THE TIMES OF INDIA

Date: 30-05-17

Modi in Europe

India must capitalise on the ongoing shifts in the global order

Embarking on his latest foreign tour, Prime Minister Narendra Modi is visiting Germany, Spain, Russia and France over the next few days. The tour comes at a time when the global order is undergoing fundamental shifts. Populist sentiment is surging in Western countries, triggering dramatic political change. This includes Europe, currently dealing with the aftermath of Brexit and a new US administration that wants EU member nations to shoulder greater responsibilities for their defence. In fact, German Chancellor Angela Merkel recently said that Europe could no longer completely depend on others – a reference to the US and UK – and needed to fight for its own destiny.

Such a reordering of Europe and the world presents opportunities as well as threats for India. For example, Brexit opens up the possibility of a mutually beneficial India-UK free trade deal that wouldn't have happened under the aegis of the old EU. Similarly, Brexit indirectly puts pressure on EU to get its own long-delayed trade agreement with India up and running.Meanwhile, US President Donald Trump and his Russian counterpart President Vladimir Putin have a good chance of working out a US-Russia modus vivendi. This would be beneficial for India and Modi must attempt to nudge both powers in this direction. That said, it would also be welcome if the US continues to provide leadership in areas such as climate change. Trump refused to commit to the 2015 Paris climate accord at the recent G7 summit and may decide to pull America out. American leadership receding here would only see China fill the vacuum – not a very appealing proposition given that climate change must be taken seriously and China mostly works against India at international fora. In short, Indian diplomacy needs to be extremely agile in a world that is being unmade and remade again.

Date: 30-05-17

Sell Air India

To boost economy, Modi government must invest resources where they are really needed

Finance minister Arun Jaitley has made a lucid and compelling case for why the government should divest stake in Air India. His argument should now be taken to its logical conclusion with a strategic sale of the loss-making airline. As Jaitley says, Air India's market share is now only 14%. Private airlines are already fulfilling 86% of market demand and there is no doubt they can fulfil all of it. Government resources are scarce. It makes no sense for government to be running businesses like airlines or hotels where the private sector does an excellent job. Where the private sector can deliver, government spending represents misallocation and haemorrhaging of taxpayer's money.

The NDA government must, therefore, privatise Air India. This will free up resources which can be deployed in areas where the private sector cannot meet all needs, and which happen to be poorly served in India, such as healthcare and education. As minister in the earlier NDA government, Jaitley had pushed for disinvestment in Air India. Unfortunately, it did not fructify and the airline became a financial drain on the exchequer.Air India's financial performance over the last decade has been appalling. It has a registered net loss every year since 2007-08. In April 2012, government put in place a turnaround plan which envisaged financial support of Rs 30,231 crore over the next nine years. Till now, almost Rs 25,000 crore has been spent with little to show; instead Air India's market share has shrunk to 14%. Apart from compelling economic reasons to disinvest Air India, Prime Minister Narendra Modi has declared war on VIP culture. Government ownership of Air India encourages ministers, parliamentarians and bureaucrats to make unreasonable demands at its expense – as Shiv Sena MP Ravindra Gaekwad's boorish behaviour recently demonstrated. Selling Air India would also be a significant blow to India's VIP culture.The previous NDA government's reform record was better than what this NDA government has demonstrated so far, which is why investment, credit and job growth are flagging currently. However, the PM's stock is running high and he has the boldness, political credibility and communication skills to launch big-bang reform. Cutting unproductive subsidies on a large scale would be such a reform. A strategic disinvestment of Air India will send an important signal in this regard, unleashing animal spirits in the economy.

दैनिक भास्कर

Date: 30-05-17

अमेरिका से निराश यूरोप से नए रिश्तों की खोज में भारत

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की जर्मनी, स्पेन, रूस और फ्रांस यात्रा जहां भारत और यूरोपीय संघ के बीच नए रिश्तों की तलाश है वहीं यूरोप को भी भारत से एक व्यापारिक और रणनीतिक सहयोगी के रूप में गहरे संबंधों की उम्मीद है। मोदी की यह यात्रा ऐसे समय हो रही है जब यूरोपीय संघ वर्षों से सहयोगी रहे देशों से निराश है। जर्मनी की चांसलर एंजिला मर्केल ने पिछले हफ्ते सिसली में हुई जी-7 देशों की शिखर बैठक के बाद कह दिया है कि अब यूरोप को अमेरिका और ब्रिटेन पर भरोसा छोड़कर अपने पर विश्वास करना होगा। अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प आवश्यक आर्थिक योगदान लिए बिना तो नाटो संधि के तहत यूरोप को सुरक्षा देने को तैयार हैं और ही अपने देश में उन्हें व्यावसायिक अवसर देने को इच्छुक हैं। उन्होंने यूरोपीय देशों को धमकाते हुए कहा है कि उनकी लाखों कारें अमेरिका में बिकती हैं और वे उसे बंद करा देंगे। उन्होंने जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते को भी स्वीकार करने में झिझक दिखाई है और अब दुनिया उसकी विफलता का गणित लगा रही है। उधर जर्मनी, रूस की सीमा विस्तार नीति से परेशान है। अमेरिका के संरक्षणवाद असहयोगपूर्ण रवैए, ब्रेग्जिट के बाद ब्रिटेन का एकला चलो का मार्ग और चीन की 'वन बेल्ट वन रोड' नीति से नब्बे के दशक में उभरी विश्व व्यापार व्यवस्था खतरे में है। ऐसे में जर्मन चांसलर एंगेला मर्केल और फ्रांस के नए राष्ट्रपति एमैन्यूएल मेक्रॉन चाहेंगे कि वैश्विक व्यवस्था अमेरिका, रूस और चीन की मनमर्जी के लिहाज से चलने की बजाय नियमों के मुताबिक चले। इस काम में भारत उन्हें महत्वपूर्ण सहयोगी मालूम पड़ता है। अभी भी भारत का सबसे ज्यादा व्यापार यूरोपीय संघ से ही होता है और यूरोपीय संघ के व्यापारिक परिमाण के लिहाज से भारत का नौवां नंबर है। मोदी की इस यात्रा का मकसद

यूरोपीय निवेशकों को भारत में सुरक्षा का भरोसा देकर भारत की ओर आकर्षित करना है। मोदी निश्चित तौर पर रूस के संबंधों में बढ़ती दरार को भी पाटने की कोशिश करेंगे और उसे यह समझाएंगे कि चीन और पाकिस्तान की दोस्ती भारत की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। इस लिहाज से यह यात्रा आर्थिक रिश्तों को प्रगाढ़ बनाने के साथ-साथ उन उदारवादी लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा में भी सहायक हो सकती है, जो बढ़ते आतंकवाद और राष्ट्रवादी कट्टरता के कारण अपनी जन्मस्थली यूरोप में सबसे ज्यादा खतरे में हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 30-05-17

बड़ा जोखिम

बीते तीन वर्ष के दौरान देश की अर्थव्यवस्था के समक्ष सबसे बड़ी चिंता रही है बैंकों के फंसे हुए कर्ज (एनपीए) में हो रहा इजाफा। सरकारी बैंकों के फंसे हुए कर्ज पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है जो बैंकिंग क्षेत्र के एनपीए के 70 फीसदी के लिए जिम्मेदार हैं। व्यापक पैमाने पर बात की जाए तो बैंकों ने अपने मुनाफे की कीमत पर भी ऐसे कर्ज बांटे। इस बीच मानो सरकारी बैंकों के एनपीए की समस्या ही काफी नहीं थी कि अब तीन प्रमुख निजी बैंकों द्वारा एनपीए की जानकारी को कमतर बताने की खबर आई है।आरबीआई को इस मुद्दे से निपटने के लिए तत्काल तेज कदम उठाने चाहिए। तभी उसके नियमन और संबंधित बैंकों की विश्वसनीयता बरकरार रह सकेगी। इसकी शुरुआत 18 अप्रैल को हुई जब आरबीआई ने अधिसूचना जारी कर कहा कि कुछ बैंकों के ऋण के वर्गीकरण और केंद्रीय बैंक के मानकों में काफी अंतर है। बैंकिंग नियामक चाहता था कि बैंक उसके नए मानकों के अधीन उचित प्रदर्शन करें और अपनी बैलेंस शीट का अंतर सामने रखें। यानी उनके फंसे हुए कर्ज की राशि और आरबीआई द्वारा देनदारी में चूक मानी जाने वाली राशि। आमतौर पर बैंक केवल आरबीआई द्वारा चिह्नित ऋण की जानकारी देते हैं। विश्लेषकों का कहना है कि निवेशक अब आरबीआई के अंकेक्षण के नतीजों का इंतजार करेंगे। तभी उनको इस बात का सही पता लग सकेगा केंद्रीय बैंक की नजर में एनपीए कितना है और बैंकों ने क्या घोषणा की है। आरबीआई की अधिसूचना के बाद निजी क्षेत्र के तीन बैंकों ने यह घोषणा की है कि वित्त वर्ष 2015-16 में सालाना रिपोर्ट में घोषित एनपीए के स्तर और आरबीआई के मानक स्तर के बीच बहुत अधिक अंतर है। इस खुलासे ने कुछ चेतावनी भरे सवाल खड़े कर दिए हैं। मिसाल के तौर पर एक सवाल यह है कि क्या यह बात केवल एक वित्त वर्ष के लिए सही है या एक से ज्यादा? दूसरी बात, ऐसा हुआ ही कैसे? आखिरकार एनपीए की स्पष्टï परिभाषा पहले से मौजूद है। हर वह ऋण एनपीए है जिसे तीन महीने से चुकाया नहीं जा रहा हो। इसकी कितनी व्याख्या की जा सकती है? या फिर ये बैंक जानबूझकर बेहतर तस्वीर पेश कर रहे थे और ऐसी कंपनियों को नया ऋण दे रहे थे जो पुराना ऋण चुकाने में ही संघर्ष कर रही थीं। इन तीन बैंकों में आखिर यह हुआ कैसे यह सवाल तो बाद का है। उससे कहीं बड़ा सवाल नियामक के सामने मुंह बाये खड़ा है। और किन बैंकों में ऐसे ही हालात हो सकते हैं? जाहिर सी बात है इन सवालों के जवाब कतई आसान नहीं हैं और यह आरबीआई पर निर्भर करता है कि वह अन्य निजी बैंकों की वित्तीय स्थिति की असली तस्वीर हमारे सामने रखे। यह बैंक के स्तर पर प्रशासनिक विफलता का मामला है। सरकारी बैंक तो इस मामले में सिद्धहस्त हो ही चुके हैं। अब सरकारी बैंकों और खुद आरबीआई से सामने आ रहे आंकड़ों की विश्वसनीयता पर भी प्रश्न चिह्नïï लग गया है। आखिरी बड़ी चिंता अंकेक्षण और लेखा फर्मों की विश्वसनीयता से जुड़ी हुई है। साथ ही उन पेशेवरों से भी जो इस काम में लगे हुए हैं। भारतीय सनदी लेखाकार संस्थान के बारे में कहा जा रहा है कि उसने आरबीआई से संपर्क करके कहा है कि वह फंसे हुए कर्ज के अनुमान में आ रहे अंतर को लेकर जानकारी जुटाए। ऐसे में यह सवाल भी अवश्य उठना चाहिए कि कैसे स्थापित अंकेक्षण फर्म खुशी-खुशी इस धोखाधड़ी पर अपनी मुहर लगाती रहीं।

जनसत्ता

Date: 29-05-17

किसका कल्याण

पशुओं के प्रति होने वाली क्रूरता को रोकने का कानून 1960 में ही बन गया था। पर इस कानून के तहत जैसी नियमावली अब जाकर जारी की गई है, पहले की किसी सरकार ने उसकी जरूरत महसूस नहीं की। बीते हफ्ते पर्यावरण मंत्रालय की तरफ से जारी किए गए नियमों को लेकर विवाद शुरू हो गया है, जिसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। दरअसल, इन नियमों को बनाना जितना आसान है, इन्हें लागू करना उतना ही मुश्किल। केरल और मिजोरम ने नए नियमों को नागरिक अधिकारों पर हमला करार देते हुए इनके विरोध का आह्वान किया है और इन्हें लागू न करने की घोषणा की है। केरल में तो मुख्य विपक्ष यानी कांग्रेस ने भी विरोध जताया है। क्या पता कुछ और राज्य भी विरोध में खड़े हो जाएं। आखिर नए नियमों में ऐसा क्या है कि हंगामा खड़ा हो गया है? नए नियमों के तहत सरकार ने पशु बाजारों में गाय, भैंस, बैल, बछड़ा, बछिया, सांड और ऊंट जैसे मवेशियों को वध के लिए खरीदे या बेचे जाने पर रोक लगा दी है। इन्हें अब उन्हीं लोगों को बेचा जा सकेगा जो लिखित गारंटी देंगे कि वे मवेशी को दूध या कृषि संबंधी काम के लिए खरीद रहे हैं। इसके लिए पहचान का प्रमाण और पते का प्रमाण भी देना होगा। खुद को किसान साबित करने के लिए कृषि राजस्व संबंधी दस्तावेज दिखाने होंगे। नई नियमावली ने और भी बहुत-सी कागजी कार्यवाही को जरूरी बना दिया है। मसलन, खरीदार को बिक्री के सबूत की प्रति विक्रेता समेत जिले के स्थानीय राजस्व अधिकारी, पशु चिकित्सा अधिकारी और पशु बाजार समिति को देनी होगी।

केरल और पूर्वोत्तर के राज्यों के विरोध की मूल वजह वहां के लोगों की भोजन संबंधी आदतें हैं। इसी तरह मांस कारोबारियों की तरफ से होने वाले विरोध की वजह भी साफ है, कि नए नियमों से उनका कारोबार बुरी तरह प्रभावित होगा। पर कुछ अन्य कारोबार भी चपेटे में आएंगे। मसलन, चमड़ा उद्योग तथा ब्रश, बैग, बटन आदि बनाने वाले उद्योग। भाजपा सरकार सोचती होगी कि गोरक्षा के उसके बड़े मकसद की खातिर ये सब कारोबारी नुकसान सहे जा सकते हैं। पर क्या नए नियम सचमुच गोरक्षा तथा पशु कल्याण में मददगार साबित होंगे? सरकार ने पशुओं की खरीद-बिक्री के लिए इतनी ज्यादा कागजी कार्यवाही को जरूरी बना दिया है कि तमाम किसानों और ग्वालों को ये बोझ ही मालूम होंगे। मवेशी खरीदना-बेचना अब बेहद मुश्किल हो जाएगा। एक नए तरह के इंस्पेक्टर राज की आशंका से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

अधिकतर बड़े राज्यों में पहले से गोवध निषेध का कानून लागू है। उत्तर भारत, मध्य भारत और पश्चिम भारत में तो ये कानून काफी सख्त बना दिए गए हैं जिनके तहत दस साल तक के कारावास का प्रावधान है। फिर, नए नियमों की जरूरत क्यों महसूस की गई? पशुओं की खरीद-फरोख्त का नियमन राज्य का विषय है। इसलिए विरोध जताने वाले राज्यों ने नई नियमावली को संघीय ढांचे को चोट पहुंचाने वाला करार दिया है। पर पशु कल्याण केंद्र का विषय है और नई नियमावली की अधिसूचना केंद्र ने पशु बाजार के नियमन के तर्क पर जारी की है। पर क्या इससे सचमुच पशु कल्याण होगा? क्या इस अधिसूचना के पीछे कोई राजनीतिक मंशा काम कर रही है? जो हो, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि व्यावहारिकता के तकाजे की अनदेखी की गई है।

Date: 29-05-17

शिक्षा अधिकार की उलटी चाल

यह विडंबना ही है कि एक ओर केंद्र व राज्य सरकारें शिक्षा में सुधार के लिए प्रतिबद्धता जता रही हैं वहीं शिक्षण संस्थानों में अध्यापकों की भारी कमी से शिक्षण कार्य बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। आज देश के तकरीबन सभी शिक्षण संस्थान शिक्षकों की भारी कमी से जूझ रहे हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंकड़ों पर गौर करें तो देश भर के एक हजार से ज्यादा केंद्रीय स्कूलों में बारह लाख से अधिक बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं, लेकिन छात्रों की अनुपात में शिक्षकों की कमी है। यहां शिक्षकों के 10,285 पद रिक्त हैं। कमोबेश यही हालत देश के सभी राज्यों के शिक्षण संथानों की है। तकनीकी शिक्षण संस्थानों में भी शिक्षकों की भारी कमी है। पिछले वर्ष ही मंत्रालय की एक रिपोर्ट से खुलासा हुआ कि देश में एक लाख से अधिक सरकारी स्कूल ऐसे हैं जो एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं। पिछले वर्ष जीके चड्ढा पे रिव्यू कमेटी की रिपोर्ट से भी पता चला कि देश भर में 44.6 फीसद प्रोफेसरों के पद और 51 फीसद रीडरों के पद रिक्त हैं। इसी तरह व्याख्याता के 52 फीसद पद रिक्त हैं। एक आंकड़े के मुताबिक 48 से 68 फीसद शिक्षकों के सहारे पठन-पाठन चलाया जा रहा है। इस तरह देश तकरीबन चौदह लाख शिक्षकों की कमी से जूझ रहा है। गौरतलब है कि देश में सरकारी, स्थानीय निकाय और सहायता प्राप्त स्कूलों में शिक्षकों के पैंतालीस लाख पद हैं। लेकिन स्थिति यह है कि उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल समेत आठ राज्यों में ही शिक्षकों के नौ लाख से अधिक पद रिक्त हैं। अकेले उत्तर प्रदेश में तीन लाख से अधिक शिक्षकों की कमी है। पिछले माह सर्व शिक्षा अभियान की वास्तविक स्थिति जानने के लिए केंद्र सरकार की ओर से आए ज्वाइंट रिव्यू मिशन के सामने यह खुलासा हुआ कि उत्तर प्रदेश में 7429 परिषदीय स्कूल सिर्फ एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं।उत्तर प्रदेश के तकरीबन 47,483 अर्थात 42 प्रतिशत परिषदीय प्राथमिक विद्यालय ऐसे हैं जिनमें छात्र-शिक्षक अनुपात 1:35 के मानक से अधिक है। मजेदार बात यह कि राज्य के विभिन्न स्कूलों में छात्र-संख्या के अनुपात में तकरीबन पैंसठ हजार से अधिक शिक्षक तैनात हैं और तकरीबन सात हजार उच्च प्राथमिक विद्यालयों में छात्र-शिक्षक अनुपात मानक से अधिक है। राज्य के 87 प्रतिशत उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कई विषयों के शिक्षक नहीं हैं। 'प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन' की सालाना रिपोर्ट से खुलासा हुआ कि उत्तर प्रदेश में पिछले दो साल के दरम्यान स्कूल न जाने वाले बच्चों का प्रतिशत 4.9 से बढ़ कर 5.3 हो गया है। प्रदेश के केवल सैंतीस फीसद बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के मुताबिक उत्तर प्रदेश में 16,12,285 बच्चे ऐसे हैं जो स्कूल नहीं जाते। यही हाल अन्य राज्यों का भी है। दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह भी है कि देश में उपलब्ध शिक्षकों में भी तकरीबन बीस फीसद शिक्षक योग्यता मानकों के अनुरूप नहीं हैं।

एक आंकड़े के मुताबिक सर्व शिक्षा अभियान के तहत नियुक्त शिक्षकों में छह लाख शिक्षक अप्रशिक्षित हैं। बिहार में 1.90 लाख और उत्तर प्रदेश में 1.24 लाख शिक्षक जरूरी योग्यता नहीं रखते। छत्तीसगढ़ में पैंतालीस हजार और मध्यप्रदेश में पैंतीस हजार अप्रशिक्षित शिक्षकों के भरोसे काम चलाया जा रहा है। इसी तरह की समस्या से झारखंड, पश्चिम बंगाल और असम समेत अन्य राज्य भी जूझ रहे हैं। जबकि शिक्षा अधिकार कानून में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और हर स्कूली छात्र को प्रशिक्षित शिक्षकों से पढ़ाए जाने का प्रावधान है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी शिक्षण संस्थानों में उपलब्ध शिक्षक भी अपने उत्तरदायित्वों का समुचित निर्वाह नहीं कर रहे हैं। शिक्षकों के शिक्षण संस्थानों से गायब रहने की खबरें आए दिन आती रहती हैं।केंद्र सरकार द्वारा कराए गए सर्वे में वर्ष 2006-07 में प्राइमरी स्कूलों में 81.07 फीसद और 2012-13 में 84.3 फीसद ही शिक्षक उपस्थित मिले, यानी पंद्रह से बीस फीसद गायब थे। इसका असर पढ़ाई पर दिखेगा ही। अन्य कई रिपोर्टों से भी उजागर हो चुका है कि देश के तिरपन फीसद से अधिक बच्चे दो अंक वाले घटाने के सवाल हल करने में सक्षम नहीं हैं। आधे से अधिक बच्चे गणित में बेहद कमजोर हैं। पांचवीं के अस्सी फीसद छात्र दूसरी कक्षा के पाठ सही तरीके से पढ़ नहीं पाते हैं। आठवीं के बच्चे जोड़-घटाना और भाग तक नहीं जानते।

संयुक्त राष्ट्र की एजुकेशनल फॉर आॅल ग्लोबल मॉनिटरिंग 2013-14 की एक रिपोर्ट में भारत में शिक्षा की बदहाली के कई कारण गिनाए गए हैं लेकिन शिक्षा पर होने वाले खर्च में भारी असमानता को सर्वाधिक प्रमुख कारण माना गया है। उदाहरण के तौर पर, केरल में प्रतिव्यक्ति शिक्षा पर खर्च लगभग बयालीस हजार रुपए है, जबकि बिहार समेत कई राज्यों मे यह छह हजार रुपए या इससे भी कम है। रिपोर्ट के मुताबिक उत्तर प्रदेश में गरीबी के कारण सत्तर फीसद और मध्यप्रदेश में पचासी फीसद गरीब बच्चे पांचवीं तक ही शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। चिंताजनक तथ्य यह भी कि देश में शिक्षा अधिकार कानून तथा सर्व शिक्षा अभियान जैसी योजनाओं के बावजूद लाखों बच्चे स्कूली शिक्षा की परिधि से बाहर हैं। वर्ष 2014 में कराए गए एक स्वतंत्र सर्वेक्षण के अनुसार छह से चौदह साल के आयु वर्ग में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 60.64 लाख थी। पिछले वर्ष संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में आशंका जताई गई थी कि भारत 2030 तक सबको शिक्षा देने के लक्ष्य को हासिल नहीं कर पाएगा। रिपोर्ट के मुताबिक हालात इसी तरह बने रहे तो सबको प्राथमिक शिक्षा 2050 तक, सेकेंडरी शिक्षा 2060 तक और अपर सेकेंडरी शिक्षा 2085 से पहले मिलना कठिन है।

गौरतलब है कि 2015 में संयुक्त राष्ट्र के टिकाऊ विकास लक्ष्यों को 2030 तक हासिल करने के संकल्प पर भारत ने भी हस्ताक्षर किए थे। लेकिन अब ये लक्ष्य काफी दूर दिखने लगे हैं। आज देश में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा से वंचित बच्चों की संख्या 1.11 करोड़ है जो दुनिया में सर्वाधिक है। इसी तरह अपर सेकंडरी शिक्षा से वंचित विद्यार्थियों की तादाद 4.68 करोड़ है। यह स्थिति तब है जब देश में शिक्षा अधिकार कानून लागू है और सर्व शिक्षा अभियान पर अरबों रुपए खर्च किया जा रहा है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक रिपोर्ट के मुताबिक सोलह फीसद बच्चे बीच में ही प्राथमिक शिक्षा और बत्तीस फीसद बच्चे जूनियर हाईस्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। तकनीकी शिक्षण संस्थानों का हाल भी बेहद चिंताजनक है। हर वर्ष साठ हजार भारतीय छात्र इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए विदेशी शिक्षण संस्थानों की ओर रुख कर रहे हैं। एक वक्त था जब इंजीनियर बनने का सपना देखने वाला हर छात्र यही चाहता था कि उसे इंडियन इंस्टीट्यूट आॅफ टेक्नोलॉजी यानी आइआइटी में दाखिला मिले। लेकिन मौजूदा परिस्थितियों में युवाओं की सोच में बदलाव आया है और उनकी नजर में अब आइआइटी को लेकर पहले जैसा आकर्षण नहीं है। इसके लिए संस्थानों में शिक्षकों का अभाव और संसाधनों की भारी कमी मुख्य रूप से जिम्मेवार है। पिछले दिनों उद्योग संगठन एसोचैम की तरफ से कराए गए एक अध्ययन में कहा गया कि शिक्षा में सुधार की रफ्तार अगर ऐसी ही रही तो भारत को विकसित देशों की तरह अपनी शिक्षा के स्तर को शीर्ष पर ले जाने में एक सौ छब्बीस साल का समय लगेगा। उसने अपने सुझाव में यह भी कहा है कि शिक्षा प्रणाली में बड़े बदलाव की जरूरत है और शिक्षा बजट जीडीपी का छह फीसद किया जाना आवश्यक है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 29-05-17

विदेश नीति की परख

हिन्द महासागर चालीस देशों को स्पर्श करता है और इसके तटों पर चालीस फीसद जनसंख्या बसती है। इस क्षेत्र के कई छोटे-छोटे देश हैं, जो अपने भविष्य और सुरक्षा के लिए भारत की तरफ देखते हैं। मगर भारत का हिन्द महासागर के इलाके पर समुचित ध्यान न देना और संकुचित समुद्री सोच ने चीन को इन इलाकों में ताकतवर और वर्चस्व स्थापित करने का मौका उपलब्ध करा दिया। भारतीय नेतृत्व की यह उदासीनता पिछले दस सालों में ज्यादा देखी गई है। अब नरेन्द्र मोदी के सत्ता संभलने के बाद इस इलाके में भारत अपनी खोई ताकता को एक बार फिर से

वापस पाने की कवायद में जुट गया है। इसी के तहत नई दिल्ली चीन के बढ़ते प्रभुत्व या उसके असर को कम करने की दिशा में जोर-शोर से जुट गया है। मॉरीशस के साथ चार अहम समझौता और उसे 50 करोड़ डॉलर की कर्ज सुविधा उपलब्ध कराने का ऐलान इसी तकाजे को केंद्र में रखकर किया गया है। मॉरीशस के प्रधानमंत्री प्राविंद जगन्नाथ और उनके समकक्ष नरेन्द्र मोदी ने समुद्री क्षेत्र सहित विभिन्न क्षेत्रों में आपसी संबंधों को और गहरा बनाने का संकल्प जतलाया। मॉरीशस ही नहीं हिन्द महासागरीय देशों के साथ भारत के बनते-बिगड़ते रिश्तों के कई अध्याय हैं। कुछ मामलों में इन द्वीपीय देशों के प्रति भारत का ठंडा व्यवहार तो कई मसलों पर चीन की आक्रामक और वर्चस्ववादी नीतियों का अहम रोल रहा। मॉरीशस इस क्षेत्र का "लघु भारत' कहलाता है। यह आर्थिक और सुरक्षा कारणों से नई दिल्ली के निकट है। इसकी 70 फीसद आबादी भारतीय मूल की है। 1983 के राजनीतिक संकट में भारत ने इसकी मदद की थी। हां, चीन हर हाल में मॉरीशस को भारत से दूर करने की कोशिश में जुटा है। यही रणनीति उसने सेशेल्स, श्री लंका, नेपाल, म्यामांर और बाकी देशों के लिए बना रखी है। इसकी काट यही है कि भारत उन देशों के प्रति आर्थिक, सैन्य और राजनीतिक प्रतिबद्धता लंबे समय तक रखे। साथ ही इन देशों के सहायता कार्यक्रमों में भारत को हाथ बंटाना होगा और भारतवंशियों से जुड़ना होगा। श्री लंका में बाढ़ में फंसे लोगों की सहायता के लिए सबसे पहले पहुंचना इसी रणनीति का हिस्सा है। नई दिल्ली शंकाओं को दूर करके ही इनके दिलों पर राज कर सकता है।